

● कविता...

कामना...



कितनी गहरी रही ये खाई  
मन कांपता डर से  
अतल गहराइयां मन की  
झांकने का साहस कहा  
दूर विजन एकांत में  
सरिता कूल सुहाना दृश्य कैसा  
नीम का वृक्ष  
चारों ओर से गहरी खाई  
काली सिंध बह रही मंथर  
बीहड़ खाइयां  
परिदे पी पानी तलहटी का  
आ बैठते नीम की टहनियों पर  
बड़ी मुश्किल से  
हम खाइयों के भय से पीछा  
छुड़ते  
किलोल करते ये परिदे  
हम को चिढ़ाते  
चींटियां रेंगती भू-भाग पर  
समझतीं प्राणियों को भी पेड़-पौधे  
चढ़ती और गुदगुदा जिस्म पा  
काट लेतीं त्वचा को  
किनारे नदी के  
भेड़ बकरियों का झुंड  
साथ चरवाहा  
नहाता नदी में निश्छल भाव से  
निचोड़ पानी कपड़ों से



होता साथ बकरियों के  
बादल घिर रहे आकाश में  
अतृप्त हैं ये खाइयां  
पावस में गहन ताप से  
सूखी हैं ये, संतप्त हैं,  
जल विहीना हैं  
बादलों तुम बरसो यहां इतना  
इस धारा को तृप्त कर दो  
नदी काली सिंध पानी से  
लहलहाए  
और ये बूह  
जिसके किनारे बैठा हूं  
आज मैं यहां  
इस नदी में डूब जाए  
होंगे प्रफुल्लित ग्रामवासी  
आऊंगा मैं यहां फिर  
शिशिर और हेमंत में  
हरित वृक्ष और पौधों से भरी  
देखना चाहता हूं मैं  
यह धरा  
-शैलेन्द्र चौहान

● कहानी/-मनू भंडारी

यही सच है...

गतांक से आगे...

तुम्हारे यहां आने से मैं बहुत खुश हूं!  
मेरी सांस जहां-की-तहां रुक जाती है आगे के  
शब्द सुनने के लिए, पर शब्द नहीं आते। बड़ी  
कातर, करुण और याचना-भरी दृष्टि से मैं उसे  
देखती हूं, मानो कह रही होऊं कि तुम कह क्यों नहीं  
देते निशीथ, कि आज भी तुम मुझे प्यार करते हो, तुम  
मुझे सदा अपने पास रखना चाहते हो, जो कुछ हो  
गया है, उसे भूलकर तुम मुझसे विवाह करना चाहते  
हो? कह दो, निशीथ, कह दो! यह सुनने के लिए मेरा  
मन अकुला रहा है, छटपटा रहा है। मैं बुरा नहीं  
मानूंगी, जरा भी बुरा नहीं मानूंगी। मान ही कैसे सकती  
हूं निशीथ। इतना सब हो जाने के बाद भी शायद मैं  
तुम्हें प्यार करती हूं - शायद नहीं, सचमुच ही मैं तुम्हें  
प्यार करती हूं।

मैं जानती हूं - तुम कुछ नहीं कहोगे, सदा के ही  
मितभाषी जो हो। फिर भी कुछ सुनने की आतुरता  
लिए मैं तुम्हारी तरफ देखती रहती हूं। पर तुम्हारी नजर  
तो लेक के पानी पर जमी हुई है शांत, मौन।

आत्मीयता के ये क्षण अनकहे भले ही रह जाएं पर  
अनबूझे नहीं रह सकते। तुम चाहे न कहो, पर मैं  
जानती हूं, तुम आज भी मुझे प्यार करते हो, बहुत  
प्यार करते हो। मेरे कलकत्ता आ जाने के बाद इस टूटे  
संबंध को फिर से जोड़ने की बात ही तुम इस समय  
सोच रहे हो। तुम आज भी मुझे अपना ही समझते हो,  
तुम जानते हो, आज भी दीपा तुम्हारी है। और मैं?

लगता है, इस प्रश्न का उत्तर देने का साहस मुझमें  
नहीं है। मुझे डर है कि जिस आधार पर मैं तुमसे  
नफरत करती थी, उसी आधार पर कहीं मुझे अपने से  
नफरत न करनी पड़े।

लगता है, रात आधी से भी अधिक ढल गई है।  
कानपुर

मन में उत्कट अभिलाषा होते हुए भी निशीथ की  
आवश्यक मीटिंग की बात सुनकर मैंने कह दिया था  
कि तुम स्टेशन मत आना। इरा आई थी, पर गाड़ी पर  
बिठाकर ही चली गई, या कहूं कि मैंने जबर्दस्ती ही  
उसे भेज दिया। मैं जानती थी कि लाख मना करने पर  
भी निशीथ आएगा और विदा के उन अंतिम क्षणों में मैं  
उसके साथ अकेली ही रहना चाहती थी। मन में एक  
दबी-सी आशा थी कि चलते समय ही शायद वह कुछ  
कह दे। गाड़ी चलने में जब दस मिनट रह गए तो  
देखा, बड़ी व्यग्रता से डिब्बों में झांकता-झांकता निशीथ  
आ रहा था। पागल! उसे इतना तो समझना चाहिए कि  
उसकी प्रतीक्षा में मैं यहां बाहर खड़ी हूं।

मैं दौड़कर उसके पास जाती हूं, आप क्यों आए?  
पर मुझे उसका आना बड़ा अच्छा लगता है। वह बहुत  
थका हुआ लग रहा है। शायद सारा दिन बहुत व्यस्त  
रहा और दौड़ता-दौड़ता मुझे सी-ऑफ करने यहां आ  
पहुंचा। मन करता है कुछ ऐसा करूं, जिससे इसकी

● शायरी...



झूठ जब भी सर उठाये वार होना चाहिए,  
सच को सिंहासन पे ही हर बार होना चाहिए।  
बात की गांठें जरा ढीली ही रहने दो मियां,  
हो किला मजबूत लेकिन द्वार होना चाहिए।

फिक्र ऐसी हो कि हम फाके में भी सुलतान हों,  
क्या जरूरी है कि बंगला - कार होना चाहिये।  
मैं कि दुनिया से मिलूं कैफ़ी और साहिर  
की तरह,  
पास तुम आओ तो मन गुलज़ार होना चाहिए।



मैं खीज  
पड़ती हूं।  
वह शायद  
समझ जाता है,  
सो चुप हो  
जाता है। हम  
दोनों एक क्षण  
को एक-दूसरे  
की ओर देखते  
हैं।

मैं उसकी आंखों  
में विचित्र-  
सी छायाएं  
देखती हूं, मानो  
कुछ है, जो  
उसके मन में  
घुट रहा है,  
उसे मथ  
रहा है, पर वह  
कह नहीं पा  
रहा है। वह  
क्यों नहीं कह  
देता? क्यों नहीं  
अपने मन की  
इस घुटन को  
हल्का कर  
लेता?

सारी थकान दूर हो जाए। पर क्या करूं? हम  
डिब्बे के पास आ जाते हैं।

जगह अच्छी मिल गई? वह अंदर झांकते हुए  
पूछता है।

हां!  
पानी-वानी तो है?  
है।

बिस्तर फैला लिया?

मैं खीज पड़ती हूं। वह शायद समझ जाता है,  
सो चुप हो जाता है। हम दोनों एक क्षण को  
एक-दूसरे की ओर देखते हैं। मैं उसकी आंखों  
में विचित्र-सी छायाएं देखती हूं, मानो कुछ है,  
जो उसके मन में घुट रहा है, उसे मथ रहा है, पर  
वह कह नहीं पा रहा है। वह क्यों नहीं कह  
देता? क्यों नहीं अपने मन की इस घुटन को  
हल्का कर लेता?

आज भीड़ विशेष नहीं है, चारों ओर नजर  
डालकर वह कहता है।

मैं भी एक बार चारों ओर देख लेती हूं, पर  
नजर मेरी बार-बार घड़ी पर ही जा रही है। जैसे-  
जैसे समय सरक रहा है, मेरा मन किसी गहरे  
अवसाद में डूब रहा है। मुझे कभी उस पर दया  
आती है तो कभी खीज। गाड़ी चलने में केवल  
तीन मिनट बाकी रह गए हैं। एक बार फिर हमारी  
नजरें मिलती हैं।

ऊपर चढ़ जाओ, अब गाड़ी चलने वाली है।

बड़ी असहाय-सी नजर से मैं उसे देखती हूं,  
मानो कह रही होऊं, तुम्हीं चढ़ा दो। और फिर  
धीरे-धीरे चढ़ जाती हूं। दरवाजे पर मैं खड़ी हूं  
और वह नीचे प्लेटफॉर्म पर।

जाकर पहुंचने की खबर देना। जैसे ही मुझे  
इधर कुछ निश्चित रूप से मालूम होगा, तुम्हें  
सूचना दूंगा।

मैं कुछ बोलती नहीं, बस उसे देखती रहती हूं  
सीटी... हरी झंडी... फिर सीटी। मेरी आंखें  
छलछला आती हैं।

गाड़ी एक हल्के-से झटके के साथ सरकने  
लगती है। वह गाड़ी के साथ कदम आगे बढ़ाता  
है और मेरे हाथ पर धीरे-से अपना हाथ रख देता

है। मेरा रोम-रोम सिंहर उठता है। मन करता है  
चिल्ला पडूं - मैं सब समझ गई, निशीथ, सब  
समझ गई। जो कुछ तुम इन चार दिनों में नहीं  
कह पाए, वह तुम्हारे इस क्षणिक स्पर्श ने कह  
दिया। विश्वास करो, यदि तुम मेरे हो तो मैं भी  
तुम्हारी हूं, केवल तुम्हारी, एकमात्र तुम्हारी! पर  
मैं कुछ कह नहीं पाती। बस, साथ चलते निशीथ  
को देखती-भर रहती हूं। गाड़ी के गति पकड़ते ही  
वह हाथ को जरा-सा दबाकर छोड़ देता है। मेरी  
छलछलाई आंखें मुंद जाती हैं। मुझे लगता है,  
यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, बाकी  
सब झूठ है, अपने को भूलने का, भरमाने का,  
छलने का असफल प्रयास है।

आंसू-भरी आंखों से मैं प्लेटफॉर्म को पीछे  
छूटता हुआ देखती हूं। सारी आकृतियां धुंधली-  
सी दिखाई देती हैं। असंख्य हिलते हुए हाथों के  
बीच निशीथ के हाथ को, उस हाथ को, जिसने  
मेरा हाथ पकड़ा था, ढूँढने का असफल-सा  
प्रयास करती हूं। गाड़ी प्लेटफॉर्म को पार कर  
जाती है, और दूर-दूर तक कलकत्ता की  
जगमगाती बत्तियां दिखाई देती हैं। धीरे-धीरे वे  
सब दूर हो जाती हैं, पीछे छूटती जाती हैं। मुझे  
लगता है, यह दैत्याकार ट्रेन मुझे मेरे घर से कहीं  
दूर ले जा रही है - अनदेखी, अनजानी राहों में  
गुमराह करने के लिए, भटकाने के लिए।

बोझिल मन से मैं अपने फैलाए हुए बिस्तर  
पर लेट जाती हूं। आंखें बंद करते ही सबसे  
पहले मेरे सामने संजय का चित्र उभरता है  
कानपुर जाकर मैं उसे क्या कहूंगी? इतने दिनों  
तक उसे छलती आई, अपने को छलती आई,  
पर अब नहीं। मैं उसे सारी बात समझा दूंगी।  
कहूंगी, संजय जिस संबंध को टूटा हुआ  
जानकर मैं भूल चुकी थी, उसकी जड़ें हृदय की  
किन अतल गहराइयों में जमी हुई थीं, इसका  
अहसास कलकत्ता में निशीथ से मिलकर हुआ।  
याद आता है, तुम निशीथ को लेकर सदैव ही  
संदिग्ध रहते थे, पर तब मैं तुम्हें ईश्यालु समझती  
थी, आज स्वीकार करती हूं कि तुम जीते, मैं  
हारी।

-जारी

● खून से जब जला दिया...

खून से जब जला दिया एक दिया  
बुझा हुआ  
फिर मुझे दे दिया गया एक दिया बुझा  
हुआ  
महफिल-ए-रंग-ओ-नूर की फिर  
मुझे याद आ गई  
फिर मुझे याद आ गया एक दिया बुझा हुआ  
मुझ को निशात से फुजूर रस्म-ए-वफा अज़ीज़ है  
मेरा रफ़ीक़-ए-शब रहा एक दिया बुझा हुआ



-पीरज़ादा क़ासीम

घर से शाला तक मेरा बचपन कहीं गुम  
हो गया,  
जी करे हर रोज ही इतवार होना चाहिए।  
साफगोई है तो दिल चेहरे से झांकेगा जरूर,  
आदमी लिपटा हुआ अखबार होना चाहिए।  
मुल्क की खातिर फकत झंडे न फहराएं हुजूर,  
इश्क है तो इश्क का इज़हार होना चाहिए।  
-अभिनव अरुण